RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-12
December -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में कला और संस्कृति

ज़िले सिंह चौधरी

राजनीति विज्ञान विभाग, सत्यवती कालेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय

कला और संस्कृति दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । मनुष्य की अपनी पहचान इन दोनों से होती है। इनके बिना वह मनुष्य कहलाने का हकदार भी नहीं बनता। कला और संस्कृति का आपसी रिश्ता काफी गहरा है। कला संस्कृति की प्रवक्ता होती है। कला के माध्यम से ही संस्कृति हमारे जीवन में अभिव्यक्ति पाती है। कला अपने सांस्कृतिक सरोकारों के साथ आगे बढ़ती है। इसकी अभिव्यक्ति कला के विविध रूपों (संगीत, नृत्य, नाटक ,चित्रकला ,स्थापत्य कला, सिनेमा ,फोटोग्राफी, साहित्य आदि) में जीवंत होती है। रामधारी सिंह दिनकर नें संस्कृति के चार अध्याय के उपसंहार में लिखते हुए कहा है कि प्रत्येक सभ्यता , प्रत्येक संस्कृति अपने आप में पूर्ण होती है। उसके सभी अंश और सभी पहलू एक दूसरे पर अवलम्बित और सबके सब किसी केंद्र से संलग्न होते हैं।

संस्कृतियां जब बदलती हैं, तब खान-पान,रहन-सहन और पोशाक भले ही बदल जाएं , किंतु उनका मन नहीं बदलता, सोचने की पद्धति नहीं बदलती और जीवन को देखने का दृष्टिकोण उनका एक ही रहता है। उपरोक्त बातों में हमें संस्कृति की परिभाषा की एक सूक्ष्म झलक मिलती है। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार, संस्कृति मानव समाज में उसू तरह व्याप्त है, जिस तरह फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता। कोई संस्कृति युग-युगान्तर में निर्मित होती है।

नृतित्वशास्त्री टॉयलर के अनुसार ,संस्कृति वह संकुल समग्रता है, जिसमें ज्ञान,विश्वास , कला ,आचार, विधि , प्रथा तथा अन्य क्षमताओं और आदतों के समावेश रहता है, जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में उपार्जित करता है। टीएस इलियट के अनसार शिष्ट व्यवहार , ज्ञानार्जन , कलाओं के आस्पादन आदि के अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की वे समस्त क्रियाएं व कार्य जो उसे विशिष्ट बनाते हैं, उसकी संस्कृति के अंग हैं।

परोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृति किसी भी समाज की परंपरा से मिली भौतिक व अभौतिक विरासत का नाम है। कला, संस्कृति का हिस्सा होती है और कला के माध्यम से कोई भी संस्कृति अपनी अभिव्यक्ति पाती है। अत: हम कला एवं संस्कृति को इसी रूप में देखते हैं।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है; उस समाज का दर्पण जिसकी अपनी एक संस्कृति होती हैं। प्रत्येक समाज में मनुष्य तथा उसके आस-पास के जीवित एवं अजीवित कारक पूर्ण रूप से एक दूसरे से सामंजस्य बनाये रखते हैं। मानव जीवन को संचालित करने वाले मूल्यों, नैतिक बलों तथा कर्तव्यों का इस सामजस्य के निर्वाह में महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन तत्वों की अभिव्यक्ति ही हमारी 'संस्कृति' का निर्माण करती है। यह अभिव्यक्ति सृजनात्मक, अप्रत्यक्ष, बहुमुखी तथा दीर्घकालीन होती है।

अब प्रश्न उठता है कि इस अप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अभिव्यक्ति अर्थात संस्कृति का शाब्दिक अर्थ क्या है? विद्वानों के अनुसार 'सम' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट' के आगम तथा 'क्तिन' प्रत्यय के योग से 'संस्कृति' शब्द का निर्माण होता है। विद्वानो की मानें तो मनुष्य की भूषणयुक्त अर्थात सुन्दर सम्यक कृति या चेष्टाएं ही संस्कृति हैं। स्मरण रहे कि 'संस्कृति' और 'सभ्यता' दो अलग-अलग शब्द हैं। सभ्यता मानव की 'भौतिक' आवश्यकताओं की पूर्ति करती है जैसे वर्चस्व, दौलत, साम्राज्य इत्यादि किन्तु 'संस्कृति' आत्मा का आहार है, मन को प्रसन्न करने का साधन। यदि 'पुष्प' सभ्यता है तो 'सुगंध' संस्कृति है।

बरसों का अर्जन, विचार-विमर्श , मैत्री, तथा अन्य आदान-प्रदान कब संस्कृति बन जाते हैं और कब हमारे समाज का आधार बनते हैं-- हमें पता ही नही लग पाता। एक तरफ ये बल परोक्ष बने रहते हैं लेकिन जब मनुष्य इनको प्रत्यक्ष करना चाहता है तो वह अन्य अभिव्यक्तियों का सहारा लेता है जैसे साहित्य, चित्रकला, नृत्य, ललित कला, संगीत इत्यादि। साहित्य और संस्कृति का गहरा

सम्बन्ध है जिसको यदि कागज़-कलम के सहारे तहरीर किया जाये तो यह सम्बन्ध 'ग्रन्थ' का रूप ले ले।

मनुष्य की उत्तम कृतियों का उद्गम उसकी संस्कृति है जिसे वह साहित्य के ज़रिए सामने लाता है। उदाहरणार्थ भारतीय संस्कृति का आधार एवं परम-ध्येय विश्व-शांति रहा है जिसकी अभिव्यक्ति महोपनिषद में 'उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में हुई। उर्दू साहित्य के महान रत्न अल्लामा इक़बाल ने इसी बात को 'अखुव्वत की जहाँगीरी, मुहब्बत की फ़रावानी' कहकर सम्बोधित किया। और जब-जब विश्वशांति पर हमले हुए हैं, इसके प्रति छल करने के क़दम उठाये गए हैं, तब-तब किसी साहित्यकार ने ही आवाज़ उठाई है। सर्वविदित है कि 'लीग ऑफ़ नेशंस' की कपटपूर्वक स्थापना के विरुद्ध बोलते हुए जनवरी 1921 में नोबेल साहित्यकार रबीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा था कि 'मानवजाति इसके लिए कदापि तैयार नही है'।

मनुष्य उन्मुक्त है, स्वछंद है और यही संस्कृति का मर्म है। मनुष्य को यातना देने वाले बंधन स्वीकार नहीं। विश्वपटल पर पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध बोलने का बल जनमानस को इसी साहित्य ने दिया। संस्कृत में 'वन्दे मातरम' उर्दू में 'सरफ़रोशी की तमन्ना' बांग्ला में 'एकला चलो रे' जैसे उद्घोषों ने स्वतंत्रता की उन्मुक्त अभिव्यक्तियों को अचूक सामर्थ्य दी। फ्रांस की क्रांति का मक़सद भी तीन 'शब्दों' में ढला-- स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। इसके अतिरिक्त जब हमारी सामाजिक व्यवस्था की बात आती है तो इसमें दो तत्व विद्यमान होते हैं अर्थात संस्कृति के 'ताने' में हमारे कार्यों, हमारे कर्मों का 'बाना' बुना जाता है तब जाकर एक स्थिर समाज बनता है। संस्कृति पर आधारित समाज की खाक़ाकशी साहित्य से ही होती है। कभी प्रेमचंद अपनी 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'ईदगाह' से समाज की तह तक जाते हैं, कभी महादेवी वर्मा 'मेरा परिवार', 'गिल्लू' और 'स्मृति की रेखाओं' में इंसानियत के दायरे को मानव योनि के भी बाहर देखती हैं। विलियम वर्ड्सवर्थ इन्द्रधनुष की तश्तरी पर बैठकर जनमानस को प्रकृति की सैर करा रहे हैं। कभी जॉन कीट्स को मनुष्य की प्रेमतृप्ति प्रकट करते हुए देखा जाता है तो कभी रूमी, रहीम, मीरा रसखान को परम-प्रियतम की परम-तृष्णा में डूबे हुए देखा जाता है।

यह सब किस बल के अनुरूप है ? इसका मक़सद क्या है ? ये मन की मुद्राएँ क्यों कागज़ पर अंकित की जाती हैं? क्यों ये जनमानस को लुभाती हैं ? क्यों फैज़ अहमद फैज़ कह बैठते हैं -'हम परवरिश-ए-लौहो क़लम करते रहेंगे' ? क्यों महिलाओं के दमन पर शायर मजाज़ कह उठते हैं- 'तू इस आँचल से इक परचम बना लेती तो अच्छा था'? पता चलता है कि ये सब मनुष्य के मन में उपज रही 'उत्तम कृतियों' के कारण है जिसे हम 'संस्कृति' कहते हैं। उत्तम कृतियाँ यानि उत्तम समाज बनाने की लालसा जो मनुष्य को हमेशा प्रोत्साहित करती है कि हम बनायें कुछ बहतर। यदि साहित्य न हो तो ये अभिलाषाएं जिन्हें हम अपनी संस्कृति कहते हैं, दबी की दबी रह जाएं। अथवा यूँ कह लीजिए कि संस्कृति है तो साहित्य का भी अस्तित्व है।

संस्कृति मनुष्य की वह अभिव्यक्ति है जो साहित्य की भाषा में ही प्रत्यक्ष और साकार हो पाती है और मन को आराम, सुख, प्रसन्नता देती है। ठीक उसी तरह जैसे एक सुन्दर नारी दर्पण में स्वयं को देखकर प्रसन्न होती है। ठीक ही कहा है--साहित्य समाज का दर्पण है; उस समाज का दर्पण जिसकी अपनी एक संस्कृति होती हैं। कला और संस्कृति दोनों मनुष्य के दो अभिव्यक्ति के रूप हैं जिससे वह अपना अस्तित्व खोजता और उसे बनाये रखने की कोशिश करता है।

संदर्भ

1. The Sufi order in Islam – Trimingham J.S., Oxford. 1971.
2. The History of Sufism in India, Vol. I, 1978 – SAA Razvi.
3. The Delhi Sultanate – 1999 by V. D. Mahajan.
4. The Sacred and the Profane : Qawwali Represented in the Performance of Nusrat Fateh Ali Khan – Hiromi Lorraine Sakata the world of Music 36(3) – 1994 JSTOR.
5. Review (LLR) ISSN : 2409 – 109x online Vol. 3 issue I, March 2017.